हिन्दी पद्य प्रवेशिका

१९६४

सैन्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकन्डरी एज्यूकेशन

अजमेर — नई दिल्ली

हिन्दी पद्य प्रवेशिका

सम्पादक
डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'

सैन्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकन्डरी एज्यूकेशन
अजमेर – नई दिल्ली

प्रकाशक :
सैण्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकन्डरी एज्यूकेशन,
१७-बी, इन्द्रप्रस्थ मार्ग, नई दिल्ली-१

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९६४
५००० प्रतियाँ

मूल्य : सत्तर पैसे

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक :
डिलाइट प्रेस,
चूड़ीवालान, दिल्ली-६

सम्पादकीय

प्रस्तुत काव्य-संकलन का संपादन केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षामंडल द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार अहिन्दी-भाषी छात्र-छात्राओं के लिए किया गया है। हिन्दी से परिचित न होने के कारण यह आवश्यक था कि उनके लिए ऐसी कविताओं का चयन किया जाए जो सरस एवं प्रेरणाप्रद होने के साथ-साथ भाव-गाम्भीर्य एवं भाषा-शैली की दृष्टि से अधिक दुरूह न हों। अतः इस संकलन में उन्हीं कविताओं को रखा गया है जो प्रसिद्ध, सरस तथा सरल हैं।

इस संकलन में हमने केवल आठ कवियों की रचनाएँ समाविष्ट की हैं जिनमें कबीर, तुलसी, रहीम तथा भारतेन्दु के अतिरिक्त शेष कवियों का काव्य खड़ीबोली में है। कवि-विशेष की कविताएँ उद्धृत करने से पूर्व हमने कवि-परिचय के रूप में छात्रों के लिए कवि के जीवन, कृतित्व तथा भाषा-शैली की कतिपय विशेषताओं का संक्षिप्त उल्लेख कर दिया है। पुस्तक के अन्त में कविताओं में आए हुए कठिन शब्दों का अर्थ दिया है। बीच-बीच में यथास्थान अभ्यास के लिए प्रश्न भी दे दिए गए हैं।

आशा है यह लघु संकलन अहिन्दी-भाषी छात्रों को रुचिकर प्रतीत होगा और इसके माध्यम से वे हिन्दी-काव्य से परिचित हो सकेंगे।

संकलन में जिन कवियों की रचनाएं ली गई हैं उनके प्रति सम्पादक आभारी है।

—सम्पादक

अनुक्रमणिका

हिन्दी-काव्य का विकास	१—५
१. कबीरदास : दोहे	७—११
२. तुलसीदास : धनुर्भंग-प्रसंग	१२—१९
३. रहीम : दोहे	२०—२४
४. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : मातृभाषा-प्रेम, भारत-दुर्दशा, स्फुट पद	२५—२८
५. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती, मातृभूमि	२९—३४
६. सुमित्रानन्दन पन्त : याचना, यह धरती कितना देती है	३५—४०
७. सुभद्राकुमारी चौहान : मेरा नया बचपन, मेरा जीवन, झाँसी की रानी की समाधि पर	४१—४५
८. रामधारीसिंह 'दिनकर' : वीर जवान, कलम और तलवार	४६—४८
परिशिष्ट : कठिन शब्दों के अर्थ	४९—५४

हिन्दी-काव्य का विकास

हिन्दी-कविता के वीज सर्वप्रथम ७ वीं-८ वीं शताब्दी में उपलब्ध होते हैं, किन्तु वास्तविक रूप में हिन्दी-काव्य ११ वीं शताब्दी में विकसित होना प्रारम्भ हुआ। हिन्दी-कविता के इस संपूर्ण विकास को चार खण्डों में विभक्त किया जा सकता है—आदि काल, भक्ति काल, रीति काल, आधुनिक काल।

आदि काल—

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखकों ने संवत् १०५० से संवत् १३७५ तक लिखे गए काव्य को आदि काल के अन्तर्गत रखा है। ऐतिहासिक दृष्टि से उस समय यवनों के आक्रमण के कारण देश में अशान्ति का वातावरण था। राजाओं के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण भी कभी-कभी युद्ध छिड़ जाता था। छोटे-छोटे राज्यों की शक्ति निरन्तर क्षीण होती जा रही थी। इस अशांति के युग में राज्याश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को प्रोत्साहित करने के लिए वीर-गाथाओं की रचना की जिनमें वीर रस की प्रमुखता है तथा कहीं-कहीं शृंगार का भी सुन्दर वर्णन है। दलपति विजय का 'खुमान रासो', चन्दवरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', नरपति नाल्ह का 'बीसलदेवरासो', तथा जगनिक का 'परमालरासो' अथवा 'आल्ह खंड' इस युग की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन ग्रंथों में प्रायः राजस्थान की साहित्यिक भाषा 'डिंगल' को प्रयुक्त किया गया है जिसमें प्राकृत तथा अपभ्रंश के शब्दों की अधिकता है। युद्धों का सजीव वर्णन करने में इन कवियों को विशेष सफलता मिली है।

भक्ति काल—

देश में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो जाने से हिन्दू-जाति को अत्यन्त निराशा हुई। ऐसे समय में कवियों ने भी भक्ति का मार्ग ग्रहण किया और वे अपने काव्य के माध्यम से जनता के दुःखी हृदय को शांति पहुँचाने लगे।

संवत् १३७५ से संवत् १७०० तक का यह समय हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ईश्वर के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों की आराधना करने के कारण इन भक्त-कवियों को मुख्यतः दो वर्गों में रखा जा सकता है—निर्गुणमार्गी तथा सगुणमार्गी। निर्गुण-भक्ति-मार्ग के कवियों में कुछ ने ईश्वर को ज्ञान-साधना द्वारा प्राप्त करने पर बल दिया तथा अन्य ने प्रेम-मार्ग द्वारा। ज्ञान का आश्रय लेने वाले निर्गुण भक्त-कवियों में महात्मा कबीरदास, धर्मदास, दादूदयाल, मलूकदास, गुरु नानक आदि का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने दोहों तथा पदों की रचना की है जिनमें एकेश्वरवाद, संसार की नश्वरता, बाह्य आडम्बरों का विरोध आदि विषयों का उल्लेख है। प्रेम-मार्ग का अनुसरण करने वाले कवियों में सूफ़ी संतों की गणना की जाती है। जायसी, कुतुबन, मंझन आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। इन्होंने रूपक के माध्यम से आत्मा को पति तथा परमात्मा को पत्नी के रूप में मानकर भक्ति का प्रतिपादन किया है। इन कवियों की पद्मावत, मृगावती, मधुमालती आदि सभी रचनाएँ प्रबंध-काव्यों के रूप में दोहा-चौपाई छंद में लिखी गई है।

सगुण-मार्गी भक्त-कवियों के भी दो वर्ग है—राम-भक्त एवं कृष्ण-भक्त। राम-भक्तों में महाकवि तुलसीदास का सर्वप्रमुख स्थान है। रामचरितमानस, विनयपत्रिका, गीतावली आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं जिनमें भगवान राम के मर्यादापूर्ण जीवन का आदर्श चित्रण हुआ है। स्वामी अग्रदास, नाभादास तथा प्राणचन्द चौहान ने भी राम-सम्बन्धी स्फुट काव्य की रचना की है। कृष्ण-भक्त कवियों में 'सूरसागर' के रचयिता महाकवि सूरदास का नाम सर्वोपरि है। उनके अतिरिक्त नन्ददास, परमानन्ददास, कृष्णदास, रसखान, मीरा आदि अन्य अनेक कवियों ने सरस ब्रजभाषा में कृष्ण-लीला-विषयक पदों की रचना की।

वस्तुतः निराश्रित जनता के हृदय में काव्य के माध्यम से ज्ञान एवं भक्ति की ज्योति जगाने के कारण हिन्दी-साहित्य में भक्तिकाल का विशेष महत्त्व

है। इसी युग में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, मीरा जैसे सुप्रसिद्ध कवियों की दिव्यवाणी का प्रसार हुआ।

रीति काल—

भक्तिकाल में हिन्दी-कविता पर्याप्त विकसित हो चुकी थी, अतः अब कवियों का ध्यान काव्य-रचना के नियमों की ओर जाने लगा। केशव, मतिराम, भूषण, देव, बिहारी, चिन्तामणि आदि कवियों ने लक्षण-ग्रंथों का निर्माण किया। इस युग के अधिकांश कवि दरबारी थे। इसी कारण इस काल के काव्य पर विलासिता का पूर्ण प्रभाव है। शृंगार के प्राधान्य के कारण यह काव्य नैतिक दृष्टि से किंचित् हेय है, किंतु कलात्मक अभिव्यक्ति इसकी प्रमुख विशेषता है।

आधुनिक काल—

भावों की व्यापकता और अभिव्यक्ति के सौन्दर्य की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में संवत् १९०० के बाद के काव्य का विशेष महत्त्व है। सुविधा की दृष्टि से इसे हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, वर्तमान युग। भारतेन्दु युग के कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र आदि प्रमुख हैं। इन कवियों ने राष्ट्र-प्रेम तथा भक्ति को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। कहीं-कहीं शृंगार का वर्णन भी है। इनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा है।

भारतेन्दु युग के पश्चात् द्विवेदी युग में कविता के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने शृंगार रस का विरोध करके समाज-सुधार-विषयक कविताओं की रचना पर बल दिया तथा ब्रजभाषा के स्थान पर काव्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा की। राष्ट्रीय काव्य का भी इस युग में पर्याप्त विकास हुआ। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का नाम इस प्रसंग में महत्त्वपूर्ण है। आचार्य द्विवेदी तथा गुप्त जी के अतिरिक्त इस काल के अन्य कवियों में श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध',

रामनरेश त्रिपाठी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने स्फुट कविता, महाकाव्य तथा खण्डकाव्य सभी की रचना की। अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस युग का काव्य वर्णन-प्रधान है। उसमें कल्पना के स्थान पर यथार्थ का ग्रहण है।

द्विवेदी युग की कविता उपदेशात्मकता तथा वर्णन की प्रधानता के कारण धीरे-धीरे नीरस प्रतीत होने लगी। इसी कारण हिन्दी-काव्य ने वर्तमान कविता के रूप में मोड़ लिया। वर्तमान कविता का विकास भी विभिन्न चरणों (छायावाद, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद) में हुआ है। छायावाद का प्रारंभ सन् १९०३ के लगभग हुआ। जयशंकर-प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पंत, श्रीमती महादेवी वर्मा इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इन कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन किया तथा उसके पीछे किसी रहस्यमयी शक्ति का आभास दिया। द्विवेदी युग के विपरीत इन्होंने अपने काव्य में कल्पना को प्रमुखता दी तथा खड़ी-बोली को विशेष रूप से मधुर बनाया।

छायावाद के बाद राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता तथा प्रगतिवादी काव्य का साथ-साथ विकास हुआ। राष्ट्रीय-साँस्कृतिक कविता के रचयिताओं में माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने श्री मैथिलीशरण गुप्त की परम्परा को ग्रहण करके राष्ट्र-जागरण की दिशा में ओजस्वी कविताओं की रचना की। कुछ कवियों ने गाँधी जी की विचार-धारा से प्रभावित हो कर उसे भी अपने काव्य में अभिव्यक्त किया। इसी समय कवियों के एक दूसरे वर्ग ने प्रायः रूसी साम्यवाद से प्रभावित होकर पूंजीवाद का विरोध तथा मजदूर व किसान के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए प्रगतिवादी काव्य की रचना की।

प्रायः इसी समय हिन्दी-काव्य में प्रयोगवाद प्रारम्भ हुआ। 'अज्ञेय', गिरिजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती इसी काव्य-धारा

के पोषक हैं। इन कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रायः मुक्त छंद को स्वीकार किया है। भाव एवं भाषा की नवीनता इन कवियों का लक्ष्य है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विगत एक सहस्र वर्षों में हिन्दी काव्य में अनेक परिवर्तन हुए हैं। उसमें वीरता, शृंगारिकता, समाज-सुधार, राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-सौन्दर्य आदि से सम्बद्ध अनेक प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है।

कबीरदास

महात्मा कबीरदास हिन्दी की निर्गुण काव्य-धारा के प्रमुख कवि हैं। आपके जन्म-मरण के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। विवादों के रहते हुए भी अधिकाँश विद्वानों ने आप का जन्म-संवत् १४५६ तथा मृत्यु-संवत् १५७५ स्वीकार किया है।

कबीरदास जी ने विधिवत् शिक्षा प्राप्त नहीं की। स्वामी रामानन्द को गुरु रूप में स्वीकार करने के उपरान्त साधु-महात्माओं की संगति तथा देशाटन करके इन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया था उसी की अभिव्यक्ति अपने काव्य में कर दी। आप मुख्यतः समाज-सुधारक थे। मुसलमानों और हिन्दुओं में प्रचलित विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का इन्होंने खुल कर खण्डन किया तथा गुरु, साधु, सत्संगति, हरि-स्मरण आदि की महिमा का गान किया। वस्तुतः आपने अपने सम्पूर्ण काव्य में कर्मकाण्ड से ऊपर उठकर बाह्याडम्बरों की अवहेलना करते हुए धर्म-तत्त्व पर बल दिया है।

आपके साखी (दोहे) तथा शब्दों (पदों) में काव्यत्व की दृष्टि से कुछ न्यूनताएँ अवश्य रह गई हैं, किन्तु सामाजिक प्रभाव की दृष्टि से वे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहे हैं। इन दोहों तथा पदों का संकलन 'बीजक' के अन्तर्गत किया गया है। इनकी भाषा सधुक्कड़ी है, अर्थात् उसमें अरबी, फ़ारसी, राजस्थानी, व्रज, पूर्वी हिन्दी आदि के विभिन्न शब्दों का मिश्रण है।

वस्तुतः जन-जागरण की दिशा में महात्मा कबीरदास ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनके अनेक दोहे अब भी जन-साधारण में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

दोहे

सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात ।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जात ॥१॥
गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ॥२॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय ।
सात समुंद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥३॥
जाको राखै साइयाँ, मारि न सक्कै कोय ।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥४॥
तेरा साँई तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिर ढूँढ़े घास ॥५॥
लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥६॥
आया था संसार में, देखन को बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजर अनूप ॥७॥
साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय ॥८॥
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय ।
नाता तोड़ै, हरि भजै, भक्त कहावै सोय । ९॥
कामी क्रोधी लालची, इन तें भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥१०॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुई धरै, तब पैठे घर माहिं ॥११॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामैं दो न समाहिं ॥१२॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं, हरिजन हरि हीं देत ॥१३॥
दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥१४॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥१५॥
तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूं तित तूं ॥१६॥
साँईं इतना दीजिये, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥१७॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार ॥१८॥
अवगुन किए तो बहु किए, करत न मानी हार।
भावैं बंदा बकसिए, भावैं गरदन मार ॥१९॥
तुम तो समरथ साँइयाँ, दृढ़ करि पकरो बाँहिं।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छौंड़ो मग माहिं ॥२०॥
जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥२१॥
नैनों अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेव।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देंव ॥२२॥

सिंहों के लेहँड़े नहीं, हंसों की नहिं पात।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात ॥२३॥
साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ॥२४॥
कबिरा संगत साध की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाधि ॥२५॥
कबिरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहैं, क्या घर क्या परदेस ॥२६॥
पानी केरा बुद्बुदा, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥२७॥
काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥२८॥
आए हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
इक सिंहासन चढ़ि चले, इक बँधि जात जँजीर ॥२९॥
चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइकै, साबित गया न कोय ॥३०॥
माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकार।
फूली-फूली चुनि लिए, काल्हि हमारी बार ॥३१॥
जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥३१॥
ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥३३॥
माँगन मरन समान है, मति कोई माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥३४॥

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोए बास न जाय ॥३५॥
पोथी पढि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥३६॥
निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥३७॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥३८॥
चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए, सोई साहंसाह ॥३९॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजों आपना, मुझ-सा बुरा न होय ॥४०॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ता हिरदे गुरु आप ॥४१॥
मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोई एक ॥४२॥

अभ्यास

१—कबीर के दोहा संख्या—९, १०, १४, १५, २१ से आपको क्या उपदेश मिलता है ?

२—गुरु-महिमा के सम्बन्ध में कबीर का कोई दोहा सुनाइये।

३—निम्नलिखित शब्दों को शुद्ध रूप में लिखिए—
कागद, गुन, मिरग, केस, तिरसूल, हिरदे, नैन, समरथ, कबिरा, अच्छर, छिमा, अब्ब।

४—"पानी केरा बुद्‌बुदा····· तारा परभात" इस दोहे का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

तुलसीदास

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में गोस्वामी तुलसीदास जी का अन्यतम स्थान है। मुस्लिम आक्रमणों के फलस्वरूप निराश हिन्दू-जाति को भगवत्-प्रेम की ओर उन्मुख करने में आपका विशेष योग रहा है। आपके जन्म के सम्बन्ध में दो मत हैं। कुछ विद्वान् आपका जन्म राजापुर नामक ग्राम में संवत् १५५४ में अभुक्तमूल नक्षत्र में मानते हैं तथा कतिपय अन्य विद्वान् एटा जिले के अन्तर्गत सोरों ग्राम में संवत् १५८९ में सिद्ध करते हैं। इनके पिता का नाम आत्माराम तथा माता का नाम हुलसी था। अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया तथा इस प्रकार इनका बचपन कष्ट में व्यतीत हुआ। महात्मा नरहरिदास को इन्होंने गुरु रूप में स्वीकार करके नाना शास्त्रों का अध्ययन किया।

गोस्वामी जी की पत्नी का नाम रत्नावली था जिससे आप अत्यधिक प्रेम करते थे। एक बार प्रेमासक्त होकर आप अपनी पत्नी के पीछे-पीछे अपनी ससुराल पहुँच गए। पत्नी ने लज्जित होकर इन्हें फटकारा और भगवान् में अनुरक्त होने का उपदेश दिया। तभी से इन्होंने अपने हृदय को राम की भक्ति में लीन कर दिया और हिन्दी-साहित्य को अनेक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न दिए।

रामचरितमानस, विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल आदि इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। इनमें से अवधी भाषा में लिखित 'रामचरितमानस' इनकी अक्षय कीर्ति का आधार-स्तम्भ है। इन सभी ग्रन्थों में कवि ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति अपनी भक्ति निवेदित की है।

महाकवि तुलसीदास ने अवधी तथा ब्रजभाषा में काव्य-रचना की है। भाषा-शैली अत्यन्त परिमार्जित, सरस एवं प्रवाहपूर्ण है। दर्शन जैसे शुष्क

तथा गम्भीर विषय को भी आपने सरल व सरस भाषा के माध्यम से सहज ग्राह्य बना दिया है। अपने युग में प्रचलित सभी काव्य-शैलियों में आपने रचना की है।

संवत् १६८० में काशी के असी घाट नामक स्थान पर आपका परलोक-वास हुआ।

धनुभंग-प्रसंग (रामचरितमानस)

तेहिं अवसर सुनि शिव धनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा।
देखि महीप सकल सकुचाने। वाज झपट जनु लवा लुकाने।
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल विसाल त्रिपुंड विराजा।
सीस जटा ससि बदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा।
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहु रिसाते।
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला।
कटि मुनि बसन तून दुइ बांधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें।

साँत बेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु, आयउ जहाँ सब भूप॥

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय विकल भुआला।
पितु समेत कहि-कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा।
जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आई खुटानी।
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा।
आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं। निज समाज लै गईं सयानीं।
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई।
रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा।
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन।

बहुरि बिलोकि विदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोपु सरीर॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए।
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे।
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटऊँ महि जहँ लहि तब राजू।

× × ×

समय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु विषादु कछु, बोले श्री रघुबीरु॥

नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।
सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई।
सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा।
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने।
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुं न असि रिस कीन्हि गोसाईं।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू।

रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न संभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु, बिदित सकल संसार॥

× × ×

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी।
पुनि-पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूंकि पहारू।
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना।
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउं रिस रोकी।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई।

बधें पापु अपकीरति हारें । मारतहूं पा परिअ तुम्हारें ।
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा । ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ।

× × ×

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा । हाय-हाय सब सभा पुकारा ।
भृगुबर परसु देखावहु मोही । बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही ।
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े । द्विज देवता घरहि के बाढ़े ।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे ।

लखन उतर आहुति सरिस, भृगुबर कोपु कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुल भानु ॥

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूध मुख करिअ न कोहू ।
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना । तौ कि बराबरि करत अयाना ।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ।
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ।
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने ।
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ।
गौर सरीर स्याम मन माहीं । कालकूट मुख पयमुख नाहीं ।
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही । नीचु मीचु सम देख न मोही ।

× × ×

बोले रामहि देइ निहोरा । बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा ।
मनु मलीन तनु सुन्दर कैसें । बिषरस भरा कनकघटु जैसें ।

सुनि लछिमन बिहसे बहुरि, नयन तरेरे राम ।
गुर समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले रामु जोरि जुग पानी ।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक बचनु करिअ नहिं काना ।

बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ।
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा।
कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं।
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई।

× × ×

बन्धु कहइ कटु समंत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें।
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिंत छाड़ कहाउब रामा।
छलु तजि करहि समरु सिव द्रोही। बन्धु सहित न मारउँ तोही।
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ।
गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू।
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू।
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा।
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी।

प्रभुहि सेवकहि समरु कस, तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु, बालकहुं नहिं दोसु॥

देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहिं रिस बीरु बिचारी।
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा।

× × ×

बार बार मुनि बिप्रबर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि, तहूँ बन्धु सम बाम॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही।
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू।
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भए पसु आई।
मैं ऐहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे।

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें।
भंजेउं चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा।
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बढ़ि लघु चूक हमारी।
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौं अस को जग सुभटु जेहि, भय बस नावहिं माथ॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना।
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ।
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना।
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई।
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के।
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू।
देत चापु आपुहिं चलि गयउ। परसुराम मन बिसमय भयउ।

जाना राम प्रभाउ तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदयँ न प्रेमु अमात॥

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू।
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी।
बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर।
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा।
करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा।
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता।
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू।
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने।

देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं, प्रभु बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटी मोहमय सूल ॥

अभ्यास

१—धनुभंग-प्रसंग के आधार पर राम और लक्ष्मण के चरित्र की विशेषताएँ बताइये।

२—निम्नलिखित शब्दों का शुद्ध रूप लिखिए—

सरीर, साँत, प्रनामा, लखनु, तिपुरारी, सीतल, उतरु, बिसमय, प्रसंसा।

३—निम्नलिखित शब्दों के दो-दो पर्यायवाची शब्द लिखिए—

सरोज, लोचन, रिपु, भानु, पिनाक, फूल, गात।

४—व्याख्या कीजिए—

(अ) 'निपटहिं द्विज करि ·····करौं अभिमाना।'

(आ) 'बिहसि लखनु बोले·····धनु बान कुठारा।'

रहीम

कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म संवत् १६१० में सम्राट् अकबर के संरक्षक बैरमखाँ खानखाना के घर हुआ था। अपनी शक्ति और प्रतिभा के बल पर आप अकबर के प्रधान सेनापति बने तथा राज-दरबार के नव-रत्नों में स्थान प्राप्त किया। अरबी, फारसी, संस्कृत और ब्रज-भाषा का आपको पर्याप्त ज्ञान था तथा आप एक अनुभवी, उदार-हृदय एवं कला-प्रिय व्यक्ति थे।

रहीम की काव्य-कृतियों में रहीम-सतसई, बरवै नायिका-भेद, शृंगार सोरठा, मदनाष्टक तथा रास-पंचाध्यायी का नाम विशेष प्रसिद्ध है जिनमें उन्होंने भक्ति तथा नीति का प्रतिपादन किया है।

मुसलमान होते हुए भी रहीम कृष्ण-भक्त कवि थे। अपनी साँसारिक अनुभूतियों को उन्होंने सरस, सरल एवं मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। उनके दोहे कल्पना पर आश्रित न होकर जीवन की यथार्थ अनुभूति हैं। उनमें अभिव्यक्ति की 'सफ़ाई' और विशेष गठन है। संभवतः यह विशेषता उनमें फारसी शेरों के प्रभाव-स्वरूप आई है। वस्तुतः तर्क-सम्पुष्ट होने के कारण उनके नीति के दोहे सूक्तियों के रूप में प्रचलित हो गए हैं।

कवि रहीम की मृत्यु ७३ वर्ष की अवस्था में संवत् १६८३ में हुई।

दोहे

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥१॥

ए रहीम दर-दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िए, वे रहीम अब नाहिं ॥२॥

कहि रहीम जग मारियो, नैन-बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन-कमल की ओट ॥३॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥४॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत और ॥५॥

कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर ॥६॥

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान ॥७॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय ॥८॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छोड़त छोह ॥९॥

जिहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात ।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ।।१०।।
जे गरीब पर हित करें ते रहीम बड़ लोग ।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग ।।११।।
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ।।१२।।
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय ।
प्यादे सो फरजी भयो, टेढो टेढो जाय ।।१३।।
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजिआरो लगे, बढ़े अँधेरो होय ।।१४।।
जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय ।
बढ़ें उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय ।।१५।।
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात ।
ज्यो नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ।।१६।।
टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार ।
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार ।।१७।।
तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान ।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान ।।१८।।
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय ।।१९।।
दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं ।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहि ।।२०।।
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय ।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ।।२१।।

धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढत गजराज ॥२२॥
पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन ।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन ।.२३।
प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहां समाय ।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय ॥२४॥
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि ।
याते हाथिहिं हहरि कै, दिये दाँत द्वै काढ़ि ॥२५॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय ।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥२६॥
भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन ।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान ॥२७॥
माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम ।
तीन पैड़ बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥२८॥
रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति ।
काटे चाटै स्वान के, दोउ भाँति विपरीत ॥२९॥
रहिमन गली है सांकरी, दूजो ना ठहराहिं ।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥३० ।
रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥३१॥
रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम ।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम ॥३२॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि ।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥३३॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिलै, मिले गांठ पड़ जाय ॥३४॥
रहिमन निज मन की विथा मनही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ॥३५॥
रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥३६॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअतहूँ, साँप सहज धरि खाय ॥३७॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥३८॥
वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥३९॥
समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात ॥४०॥

अभ्यास

१—सपूत और कपूत के विषय में रहीम ने क्या विचार व्यक्त किये हैं।
२—निम्नलिखित शब्दों को शुद्ध करके वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए—
मुसकिल, चरन, निबल, मछरी, माखन, तरवारि, मानुष।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म काशी के एक धनी परिवार में भाद्र शुक्ल ५, संवत् १९०७ को हुआ था। आपके पिता श्री गोपालचन्द्र 'गिरधर दास' उपनाम से नाटक और कविता लिखते थे। भारतेन्दु बाबू ने भी उनसे प्रेरणा प्राप्त करके हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि की। माता-पिता का देहान्त बाल्यावस्था में ही हो जाने के कारण आपने घर पर रह कर संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, बंगला, उर्दू आदि भाषाओं का अध्ययन किया तथा नाटक एवं कविता दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त साहित्य-रचना की। प्रेम माधुरी, प्रेम-फुलवारी, प्रेम-सरोवर आदि आपके काव्य-संकलन हैं, तथा सत्य हरिश्चन्द्र, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति आदि प्रसिद्ध नाटक हैं। आपके ग्रन्थों की संख्या लगभग १७५ है जिनका संकलन भारतेन्दु-ग्रन्थावली (तीन भाग) के अन्तर्गत हो चुका है।

भारतेन्दु जी की कविता के मुख्यतः तीन विषय रहे हैं—भक्ति, राष्ट्रीयता तथा प्रकृति-प्रेम। अधिकाँश कविताएँ ब्रजभाषा में लिखी गई हैं। वस्तुतः भारतेन्दु जी भारतीय नव-जागरण के युग में भाषा का आन्दोलन लेकर आए थे। उनसे पूर्ववर्ती युग में गद्य तथा पद्य दोनों क्षेत्रों में ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा थी, किन्तु भारतेन्दु जी ने गद्य-रचना के लिए खड़ीबोली को स्वीकार करके एक नया आन्दोलन चलाया। हाँ, पद्य के लिए अभी आप ब्रजभाषा का प्रयोग करने के पक्ष में ही थे। आपकी ब्रजभाषा अत्यन्त सरस, प्रवाहमयी, अनुप्रासयुक्त, मधुर एवं प्रसाद-गुण सम्पन्न है।

वस्तुतः भारतेन्दु बाबू युग-प्रवर्तक कलाकार थे। हिन्दी-साहित्य की निरन्तर वृद्धि करना ही आपका चरम लक्ष्य था। यह हिन्दी का दुर्भाग्य था कि ३५ वर्ष की अल्पायु में संवत् १९४१ में आपका असामयिक निधन हो गया।

मातृ-भाषा-प्रेम

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥१॥
अंगरेज़ी पढ़ि के जदपि, सब गुन-होत प्र बीन।
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन ॥२॥
यह सब भाषा काम की, जब लगि बाहर बास।
घर भीतर नहिं करि सकत, इन सों बुद्धि प्रकास ॥३॥
निज भाषा उन्नति बिना, कबहुँ न ह्वै है सोय।
लाख उपाय अनेक यों, भले करो किन कोय ॥४॥
इक भाषा इक जीव इक, मति सब घर के लोग।
तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग ॥५॥
पढ़ो लिखो कोउ लाख त्रिधि, भाषा बिबिध प्रकार।
पै जबहीं कछु सोचिहो, निज भाषा अनुसार। ६॥
जब अति कोमल जिय रहत, तब बालक तुतरात।
भूलत नहिं सो बात जो, तबै सिखाई जात ॥७॥
बिबिध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु, भाषा माहिं प्रचार ॥८॥
भारत में सब भिन्न अति, ताही सों उतपात।
बिबिध देस मतहू बिबिध, भाषा बिबिध लखात ॥९॥
सब मिलि तासों छाँड़ि कै, दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय ॥१०॥

भारत-दुर्दशा

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई,
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन-बल दीनो,
सब के पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो।
सबके पहिले जो रूप–रंग रस भीनो,
सबके पहले विद्या-फल निज गहि लीनो।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई,
हा हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई !!

अंगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी,
दिन-दिन दूने दुःख ईस देत हा-हा री।
सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई,
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई !!

स्फुट-पद्य

(१)

सब मिलि गाओ प्रेम बधाई।
यह संसार-रतन इक प्रेमहि और बादि चतुराई।
प्रेम बिना पी की सब बातें कहहु न लाख बनाई।
जोग ध्यान जप तप ब्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई।

हाव भाव रस रंग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई।
बिना लोन बिंजन सो सबही प्रेम रहित दरसाई।
प्रेमहि से हरिहू प्रगटत है जदपि ब्रह्म जगराई।
तासों यह जग प्रेम सार है, और न आन उपाई।

(२)

जागो जागो रे भाई !
सोअत निसि बैस गँवाई जागो जागो रे भाई।
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई।
देखि परत नहिं हित-अनहित कछु परे बैरि-बस जाई।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई।
अबहूँ चेति, पकरि राखो किन जो कुछ बची बड़ाई।
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वै है रहि जैहौ मुँह बाई।

(३)

भजौं तो गुपाल ही कों सेवौं तो गुपाल एक,
मेरो मन लागौ सब भाँति नंदलाल सों।
मेरे देव देवी गुरु माता पिता बन्धु इष्ट,
मित्र सखा हरि नातो एक गोप बाल सों।
'हरिचंद' और सों न मेरो संबंध कछु,
आसरो सदैव एक लोचन-बिसाल सों।
माँगौं तो गुपाल सों न मांगौं तो गुपाल ही सों,
रीझौं तो गुपाल पै औं खीझौं तो गुपाल सों।

अभ्यास

१—भारतेन्दु जी मातृभाषा को उन्नति का मूल कारण क्यों मानते हैं ?
२—निम्नलिखित शब्दों के शुद्ध रूप लिखिए—
सूल, प्रवीन, उतपात, बिंजन, गुपाल, बिसाल।

श्री मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संवत् १९४३ (सन् १८८६) में झाँसी ज़िले के अन्तर्गत चिरगाँव नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता सेठ रामचरण जी भगवान् राम के अनन्य भक्त थे तथा काव्य-रचना में भी रुचि लेते थे। कविवर गुप्त ने भी अपने पिता की इन दोनों विशेषताओं से प्रेरणा प्राप्त की तथा राम-भक्ति से ओतप्रोत कविताएँ लिखने लगे। मुंशी अजमेरी तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आपको समय-समय पर काफ़ी प्रोत्साहित किया। आपकी सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। हिन्दी, संस्कृत तथा बंगला भाषाओं का आपने विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

गुप्त जी वैष्णव भक्त कवि हैं, किन्तु अन्य धर्मों का भी आपने विरोध नहीं किया। आपकी कविताओं में मुख्यतः राष्ट्र-प्रेम तथा भगवान् राम के प्रति भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। अब तक आप चालीस से अधिक काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन कर चुके हैं जिनमें स्फुट तथा प्रबन्धात्मक दोनों प्रकार की रचनाएँ हैं। भारत-भारती, यशोधरा, साकेत, पंचवटी, अनघ, जयद्रथ-वध, गुरुकुल, नहुष, द्वापर, जयभारत आदि आपकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं।

गुप्त जी के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह क्लिष्ट न होकर सुबोध है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग करने पर भी उनकी भाषाशैली सरल एवं प्रवाहमयी रही है। खड़ीबोली को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कराने में आपका विशेष योग रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आपकी काव्य-भाषा में गद्य की भाषा का परिष्कार कर दिया गया है।

आपके देश-प्रेम के कारण भारत-सरकार ने आपको पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया था। बारह वर्ष तक राज्य-सभा के सम्मानित सदस्य रहने के उपरान्त आजकल आप अपने पैतृक निवास-स्थान चिरगाँव में रह कर साहित्य-साधना में लीन हैं।

भारत-भारती

मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती।
भगवान् ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।
हो भद्रभावोद्भाविनी वह भारती, हे भगवते।
सीतापते ! सीतापते !! गीतामते ! गीतामते !!

× × ×

संसार में किसका समय है एक-सा रहता सदा।
है निशि-दिवा-सी घूमती सर्वत्र विपदा-सम्पदा।
जो आज एक अनाथ है, नरनाथ कल होता वही।
जो आज उत्सव-मग्न है, कल शोक से रोता वही॥

× × ×

भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
फैलाकर मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि-भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है॥

× × ×

गौतम-वसिष्ठ-समान मुनिवर ज्ञान-दायक थे यहाँ।
मनु-याज्ञवल्क्य-समान सप्तम विधि-विधायक थे यहाँ।
बाल्मीकि-वेदव्यास-से गुण-गान-गायक थे यहाँ।
पृथु, पुरु, भरत, रघु-से अलौकिक लोकनायक थे यहाँ॥

× × ×

संसार में जो कुछ जहाँ फैला प्रकाश-विकास है।
इस जाति की ही ज्योति का उसमें प्रधानाभास है॥
करते न उन्नति-पथ परिष्कृत आर्य्य जो पहले कहीं।
संदेह है, तो विश्व में विज्ञान बढ़ता या नहीं॥

× × ×

भारत, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो!
हे पुण्य भूमि! कहाँ गई है वह तुम्हारी श्री कहो!!
अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर-मध्य केवल पंक है।
वह राज-राज कुबेर अब हा! रंक का भी रंक है॥

× × ×

अब पूर्व की-सी अन्न की होती नहीं उत्पत्ति है।
पर क्या इसी से अब हमारी घट रही सम्पत्ति है?
यदि अन्य देशों को यहाँ से अन्न जाना बन्द हो॥
तो देश फिर सम्पन्न हो, क्रन्दन रुके, आनन्द हो॥

× × ×

किस भाँति जीना चाहिए, किस भाँति मरना चाहिए।
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिए॥
पद-चिह्न उनके यत्नपूर्वक खोज लेना चाहिए।
निज पूर्व-गौरव-दीप को बुझने न देना चाहिए॥

× × ×

हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं।
संसार में किस जाति को, किस ठौर वैसे प्राप्त हैं?
भव-सिन्धु में निज पूर्वजों की रीति से ही हम तरें।
यदि हो सकें वैसे न हम तो अनुकरण तो भी करें॥

× × ×

भूलो न ऋषि-सन्तान हो, अब भी तुम्हें यदि ध्यान हो--
तो विश्व को फिर भी तुम्हारी शक्ति का कुछ ज्ञान हो।
बन कर अहो ! फिर कर्म्मयोगी वीर बड़भागी बनो।
परमार्थ के पीछे जगत में स्वार्थ के त्यागी बनो॥

× × ×

हे आर्य-सन्तानो ! उठो, अवसर निकल जावे नहीं।
देखो, बड़ों की बात जग में बिगड़ने पावे नहीं॥
जग जान ले कि न आर्य केवल नाम के ही आर्य हैं।
वे नाम के अनुरूप ही करते सदा शुभ कार्य हैं॥

मातृ-भूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है,
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं,
वन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन हैं,
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृ-भूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं,
परमहँस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण धूलि भरे हीरे कहलाये,
हम खेले-कूदे हर्ष-युत जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृ-भूमि, तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में ?

पालन, पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्षस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही,
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो ! तुझी से तुझ पर सारे,
हे मातृभूमि, हम जब कभी तेरी शरण न पायेंगे।
बस, तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायेंगे।।

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है,
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम–भाव से सदा हमारा,
हे मातृभूमि, उपजें न जो तुझसे कृषि-अंकुर कभी।
तो तड़प–तड़प कर जल मरें जठरानल में हम सभी।।

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता,
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता,
उन सब में तेरा सर्वदा, व्याप्त हो रहा तत्त्व है।
हे मातृभूमि, तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है ?

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है,
षड् ऋतुओं का विविध दृश्य युत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है,

शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्र-प्रकाश है।
हे मातृभूमि, दिन में तरणि करता तम का नाश है॥

सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति-भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं,
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नों वाली,
जो आवश्यक होते हमें, मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि, वसुधा-धरा तेरे नाम यथार्थ हैं॥

अभ्यास

१—मातृभूमि का महत्त्व अपने शब्दों में लिखिए।

२—गुप्तजी की कविता की भाषा की विशेषताएँ बताइए।

३—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखिए—

भारती, उत्कर्ष, परिष्कृत, सर, अनुकरण, स्वार्थ, परिधान, मलिनता।

४—सन्धि-विच्छेद करें—

नरनाथ, प्रधानाभास, परमार्थ, नीलाम्बर, रत्नाकर, सुधोपम।

सुमित्रानन्दन पन्त

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म संवत् १९५७ (सन् १९००) में उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले के अन्तर्गत कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। आपका बाल्यावस्था का नाम गोसाईं दत्त था, किन्तु बाद में उन्होंने इसे बदल लिया। अल्मोड़ा, काशी, प्रयाग आदि स्थानों पर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आपने हिन्दी, संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी भाषाओं का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

काव्य के प्रति विशेष रुचि होने के कारण आपने अपने छात्र-जीवन में ही कविताएँ लिखनी प्रारम्भ कर दी थीं और उस समय से अब तक निरन्तर काव्य-साधना में संलग्न हैं। अब तक आपके अनेक काव्य-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें पल्लव, वीणा, गुंजन, युगवाणी, स्वर्णकिरण, कला और बूढ़ा चाँद के नाम विशेष उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त आपका जीवन-दर्शन का महाकाव्य 'लोकायतन' भी प्रकाशित हुआ है। काव्य के अतिरिक्त गद्य में भी आपने पर्याप्त रचना की है। हार (उपन्यास), पाँच कहानियाँ तथा काव्य-संकलनों की भूमिका के रूप में लिखा गया गद्य इस दिशा में उल्लेखनीय है।

पर्वत-प्रदेश में जन्म लेने के कारण पन्त जी का प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण और कौतूहल है। इसी कारण उनकी कविताओं में प्रकृति और दर्शन की प्रचुरता है। प्रकृति का वर्णन आपने विविध रूपों में किया है—कहीं आपको प्रकृति में रहस्यवादी सत्ता के दर्शन हुए हैं, कहीं आपने उसे मानव की भाँति कार्य करते हुए चित्रित किया है तथा कहीं केवल वर्णन के द्वारा ही उसके रम्य रूप का उद्घाटन किया है। छायावाद के प्रमुख कवि होने के साथ-साथ आपने प्रगतिवादी कविताओं की रचना भी की है। मधुर भावनाओं की

अभिव्यक्ति करने के कारण आपकी भाषा कोमल एवं प्रवाहपूर्ण रही है। आपकी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि भाव अथवा वस्तु का वर्णन करते समय आप उसका जीता-जागता चित्र ही खींच देते हैं। खड़ी-बोली को सरस एवं प्रवाहपूर्ण बनाने में आपका विशेष योग रहा है।

याचना

बना मधुर मेरा जीवन !

नव नव सुमनों से चुन चुन कर,
धूलि, सुरभि, मधुरस, हिमकण,
मेरे उर की मृदु कलिका में
भर दे, कर दे विकसित मन !

बना मधुर मेरा भाषण !
वंशी-से ही कर दे मेरे
सरल प्राण औ' सरस वचन,
जैसा जैसा मुझको छेड़ें,
बोलूँ अधिक मधुर, मोहन;
जो अकर्ण अहि को भी सहसा
कर दे मन्त्र-मुग्ध, नत फन,
रोम रोम के छिद्रों से भी,
फूटे तेरा राग गहन !

बना मधुर मेरा तन, मन !

यह धरती कितना देती है ?

मैंने छुटपन में छिप कर पैसे बोए थे,
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी,
और, फूल फल कर, मैं मोटा सेठ बनूंगा !
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला !
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए !
मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक,
बाल-कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछाकर !
मैं अबोध था, मैंने गलत बीज बोए थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था !
अर्धशती हहराती निकल गई है तब से !
कितने ही मधु पतझर बीत गए अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूलीं, शरदें मुसकाईं,
सी-सी कर हेमंत कँपे, तरु झरे, खिले वन!
और जब फिर से गाढ़ी ऊदी लालसा लिए,
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने, कौतूहलवश आँगन के कोने की
गीली तह को यों ही उंगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिए मिट्टी के नीचे !
भू के अंचल में मणि-माणिक बाँध दिए हों!
मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को,

और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन!
किन्तु, एक दिन जब मैं संध्या को आँगन में
टहल रहा था—तब सहसा मैंने जो देखा
उससे हर्ष-विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से !

× × ×

निर्निमेष, क्षण भर, मैं उनको रहा देखता—
सहसा मुझे स्मरण हो आया, कुछ दिन पहले,
बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन में,
और उन्हीं से बौने पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी गर्व से,
नन्हें नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है !
ओह, समय पर उनमें कितनी फलियाँ टूटीं !
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ,
पतली चौड़ी फलियाँ ! उफ़, उनकी क्या गिनती!

यह धरती कितना देती है ! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को !
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्त्व को—
बचपन में, छिः, स्वार्थ-लोभ-वश पैसे बो कर !
रत्न-प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ!
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं,
इसमें मानव-ममता के दाने बोने हैं।
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फ़सलें—

मानवता की, जीवन श्रम से हँसे दिशाएँ--
हम जैसा बोएँगे वैसा ही पायेंगे !

अभ्यास

१—'याचना' कविता में कवि ने किस बात की इच्छा व्यक्त की है ?

२—निम्नलिखित शब्दों के विपरीतार्थक शब्द लिखिए—

मधुर, सरल, अबोध, हर्ष, निशि, ज्योति, सुप्त ।

३—व्याख्या कीजिए—

'निकल सृष्टि के.....शोक से दीवाना ।'

सुभद्राकुमारी चौहान

हिन्दी-कवयित्रियों में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का नाम विशेष उल्लेख्य है । आपका जन्म संवत् १९६१ (सन् १९०४) में प्रयाग में हुआ था तथा वहीं क्रास्थवेट् गर्ल्स कॉलिज में आपने शिक्षा प्राप्त की । लगभग पन्द्रह वर्ष की आयु में आपने कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था । कुछ समय आपने मध्यप्रदेश की धारा-सभा की सम्मानित सदस्यता के रूप में भी कार्य किया । आपने देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लिया तथा अनेक बार जेल-यात्रा की ।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में मुख्यतः दो भावों की अभिव्यक्ति हुई है—राष्ट्र-प्रेम तथा वात्सल्य । राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने वाली कविताओं में उनकी 'झाँसी की रानी' और 'जलियाँवाला बाग़ में बसन्त' विशेष प्रसिद्ध हैं । मुकुल तथा त्रिधारा नामक संग्रहों में आपकी कविताएँ संकलित हैं, तथा बिखरे मोती, उन्मादिनी, सीधे-सादे चित्र आपके प्रसिद्ध कहानी-संगह हैं ।

आपके काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी सरलता है । भाषा में घरेलूपन है, सचेष्ट भाषा के व्यवहार से वे बहुत दूर रही हैं । भावना की गहराई के बल पर आपका काव्य-युग-काव्य बन गया है ।

१५ जनवरी १९४८ को जबलपुर के निकट एक मोटर-दुर्घटना में आपका देहान्त हो गया ।

मेरा नया बचपन

बार-बार आती है मुझ को मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी ।।
चिन्ता-रहित खेलना-खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द ।।१।।

ऊँच नीच का ज्ञान नहीं था, छुआछूत किसने जानी ।।
बनी हुई थी, अहा, झोंपड़ी और चीथड़ों में रानी ।।
किये दूध के कुल्ले मैंने, चूस अँगूठा सुधा पिया।
किलकारी कल्लोल मचाकर, सूना घर आबाद किया ।।२।।

रोना और मचल जाना भी, क्या आनन्द दिखाते थे।
बड़े-बड़े मोती-से आँसू जयमाला पहनाते थे ।।
मैं रोई, माँ काम छोड़ कर आई, मुझको उठा लिया।
झाड़-पोंछ कर चूम-चूम गीले गालों को सुखा दिया। ३।।

दादा ने चन्दा दिखलाया, नेत्र-नीर द्रुत चमक उठे।
धुली हुई मुस्कान देखकर सबके चेहरे चमक उठे ।।
वह सुख का साम्राज्य छोड़कर मैं मतवाली बड़ी हुई ।।
लुटी हुई कुछ ठगी हुई-सी, दौड़ द्वार पर खड़ी हुई। ४।।

माना मैंने युवा काल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहने वाला है ।।

किन्तु यहाँ झंझट हैं भारी, युद्ध-क्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़कर, जीवन भी है भार बना ॥५॥

आ जा बचपन ! एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शांति।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली, वह अपनी प्राकृत विश्रांति॥
वह भोली-सी मधुर सरलता, वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आ कर मिटा सकेगा, तू मेरे मन का संताप ॥६॥

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन - वन - सी फूल उठी यह, छोटी-सी कुटिया मेरी॥
'माँ ओ' कह कर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी॥
कुछ मुंह में कुछ लिये हाथ में, मुझे खिलाने आई थी ॥७॥

पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल-सा झलक रहा।
मुख पर था आह्लाद, लालिमा, विजय गर्व था छलक रहा॥
मैंने पूछा 'यह क्या लाई' बोल उठी वह 'माँ काओ'।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा 'तुम्हीं खाओ' ॥८॥

पाया मैंने बचपन फिर से, बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देख कर मुझ में नव जीवन छाया॥
मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥९।

जिसे खोजती थी वर्षों से, अब जाकर उसको पाया।
भाग गया था मुझे छोड़कर, वह बचपन फिर से आया॥

मेरा जीवन

मैंने हँसना सीखा है, मैं नहीं जानती रोना।
बरसा करता पल-पल पर, मेरे जीवन में सोना॥
मैं अब तक जान न पाई, कैसी होती है पीड़ा ?
हँस-हँस जीवन में कैसे, करती है चिन्ता क्रीड़ा ?

जग है असार सुनती हूँ, मुझको सुख सार दिखाता।
मेरी आँखों के आगे, सुख का सागर लहराता॥
कहते हैं होती जाती, ख़ाली जीवन की प्याली।
पर मैं उससे पाती हूँ, प्रतिपल मदिरा मतवाली॥

उत्साह उमंग निरंतर, रहते मेरे जीवन में।
उल्लास विजय का हँसता, मेरे मतवाले मन में॥
आशा आलोकित करती, मेरे जीवन के प्रति क्षण।
हैं स्वर्ण-सूत्र से वलयित, मेरी असफलता के धन॥

सुख भरे सुनहले बादल, रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास, प्रेम, साहस हैं, जीवन के साथी मेरे।

झाँसी की रानी की समाधि पर

इस समाधि में छिपी हुई है, एक राख की ढेरी।
जल कर जिसने स्वतन्त्रता की, दिव्य आरती फेरी॥
यह समाधि, यह लघु समाधि है, झाँसी की रानी की।
अन्तिम लीला-स्थली यही है, लक्ष्मी मरदानी की॥

यहीं कहीं पर बिखर गई वह, भग्न विजयमाला-सी।
उसके फूल यहाँ संचित हैं, है यह स्मृति-शाला-सी॥
सहे वार पर वार अन्त तक, लड़ी वीर बाला-सी।
आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर, चमक उठी ज्वाला-सी॥

बढ़ जाता है मान वीर का, रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की, भस्म यथा सोने से॥
रानी से भी अधिक हमें अब, यह समाधि है प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की, आशा की चिनगारी॥

इससे भी सुन्दर समाधियाँ, हम जग में हैं पाते।
उनकी गाथा पर निशीथ में, क्षुद्र जन्तु ही गाते॥
पर कवियों की अमर गिरा में, इसकी अमिट कहानी।
स्नेह और श्रद्धा से गाती, है वीरों की बानी॥

बुन्देले हरबोलों के मुख, हमने सुनी कहानी।
खूब लड़ी मरदानी वह थी, झाँसी वाली रानी॥

अभ्यास

१—'मेरा नया बचपन' में कवयित्री ने बचपन की कौन-सी विशेषताओं का वर्णन किया है ?

२—झाँसी की रानी कौन थी और वह क्यों लड़ी ?

३—निम्नलिखित शब्दों का अर्थ लिखकर इन्हें वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए—
निर्भय, नीर, साम्राज्य, पुरुषार्थ, लालिमा, मूर्ति, स्वर्ण, सागर, समाधि, अमिट।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म बिहार प्रान्त के सिमरिया नामक ग्राम में संवत् १९६५ (सन् १९०८) में हुआ था। बी०ए० तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आपने हिन्दी-साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया तथा काव्यरचना में प्रवृत्त हुए। कुछ वर्षों तक प्राध्यापन-कार्य करने के अतिरिक्त आप अनेक वर्षों तक राज्य-सभा के सदस्य रहे। आजकल आप भागलपुर विश्वविद्यालय में उपकुलपति पद पर प्रतिष्ठित हैं।

'दिनकर' जी का काव्य राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। सरल एवं ओज-पूर्ण भाषा में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना ही इनकी विशेषता है। इनकी अधिकांश कविताओं में भारत के गौरवपूर्ण अतीत का सजीव चित्रण, नव जागरण का सन्देश तथा शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है। रचनाओं में क्रान्ति का स्वर प्रमुख रहा है।

श्री दिनकर कवि और आलोचक दोनों रूपों में प्रसिद्ध रहे हैं। रेणुका, रसवन्ती, रश्मिरथी, सामधेनी, कुरुक्षेत्र, उर्वशी आपके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं तथा संस्कृति के चार अध्याय, अर्द्धनारीश्वर, मिट्टी की ओर, प्रसाद, पंत और मैथिलीशरण आदि में आपका आलोचक रूप सहज मुखरित रहा है। आपने विदेशी कवियों की अनेक रचनाओं का भावानुवाद भी किया है।

वीर जवान

हम प्रभात की नई किरण हैं, हम दिन के आलोक नवल।
हम नवीन भारत के सैनिक, धीर, वीर, गंभीर अचल।
हम प्रहरी ऊँचे हिमाद्रि के, सुरभि स्वर्ग की लेते हैं।
हम हैं शान्ति-दूत धरणी के, छाँह सभी को देते हैं ॥१॥
हम सपूत उनके जो नर थे, अनल और मधु के मिश्रण।
जिनमें नर का तेज प्रखर था, भीतर था नारी का मन।
एक नयन संजीवन जिनका, एक नयन था हालाहल।
जितना कठिन खड्ग था कर में, उतना ही अन्तर कोमल ॥२॥
थर-थर तीनों लोक काँपते थे जिनकी ललकारों पर।
स्वर्ग नाचता था रण में जिनकी पवित्र तलवारों पर।
हम शकारि विक्रमादित्य हैं, अरि-दल को दलने वाले।
रण में ज़मीं नहीं, दुश्मन की लाशों पर चलने वाले ॥३॥
हम अर्जुन, हम भीम, शान्ति के लिए जगत में जीते हैं।
मगर शत्रु हठ करे अगर तो, लहू वक्ष का पीते हैं।
हम हैं शिवा, प्रताप रोटियाँ भले घास की खायेंगे।
मगर किसी ज़ुलमी के आगे, मस्तक नहीं झुकायेंगे ॥४॥

क़लम और तलवार

दो में से क्या तुम्हें चाहिए, कलम या कि तलवार ?
मन में ऊँचे भाव कि तन में शक्ति अजेय अपार ?

अन्ध कक्ष में बैठ रचोगे ऊँचे, मीठे गान ?
या तलवार पकड़ जीतोगे बाहर जा मैदान ?
जला ज्ञान का दीप, सिर्फ़ फैलाओगे उजियाली ?
अथवा उठा कृपाण करोगे घर की भी रखवाली ?
कलम देश की बड़ी शक्ति है, भाव जगाने वाली,
दिल ही नहीं दिमागों में भी आग लगाने वाली।
पैदा करती कलम विचारों के जलते अंगारे,
और प्रज्वलित प्राण, देश क्या कभी मरेगा मारे ?
लहू गर्म रखने को रक्खो मन में ज्वलित विचार,
हिंस्र जीव से बचने को चाहिए किन्तु तलवार।
एक भेद है और, जहाँ निर्भय होते नर-नारी,
कलम उगलती आग, जहाँ अक्षर बनते चिनगारी।
जहाँ मनुष्यों के भीतर हरदम जलते हैं शोले,
बाँहों में बिजली होती, होते दिमाग़ में गोले।
जहाँ लोग पालते लहू में हालाहल को धार,
क्या चिन्ता यदि वहाँ हाथ में हुई नहीं तलवार ?

अभ्यास

१—'वीर जवान' कविता के आधार पर यह बताइए कि एक वीर युवक में कौन-से गुण होने चाहिएँ ?

२—निम्नलिखित पर पाँच-पाँच पंक्तियों की टिप्पणियाँ लिखिए—
विक्रमादित्य, अर्जुन, भीम, शिवाजी, प्रताप।

३—"हम सपूत उनके.....उतना ही अन्तर कोमल" इन पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

४—कवि ने कलम और तलवार में किसे श्रेष्ठ माना है ? कारण भी लिखिए।

परिशिष्ट

(कठिन शब्दों के अर्थ)

कबीर

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
दात	दाता, दान देने वाला	हरिजन	भगवान् का भक्त
सक्के	सकता	अनूप	अनुपम, जिसकी तुलना न हो
सूप	अनाज पछोरने का पात्र, छाज	बरन	वर्ण, रंग
जनि	मत	वारी	न्यौछावर
जित	जहाँ	तित	वहां
भंजना	नष्ट करने वाले	बकसिए	क्षमा कीजिए
धुरहीं	गन्तव्य स्थान	बपुरा	वेचारा
उपाधि	विपत्ति	केरा	का
तिरसूल	त्रिशूल, एक अस्त्र	बास	बुरी गन्ध
छवाय	बनाकर	सुभाय	स्वभाव
छिमा	क्षमा	साहंसाह	राजा

पतंगा	सूर्य	लवा	बटेर नामक पक्षी
वृषभ	बैल	तून	तरकस
कांधे	कंधा	सांत	शान्त
भुआला	राजा	खुटानी	समाप्त हो गई
ढोटा	पुत्र	जोटा	जोड़ी
मार	कामदेव	कोपु	क्रोध
आयसु	आज्ञा	बिहाइ	छोड़ कर
धनुहीं	छोटा धनुष	लरिकाईं	बचपन में
तिपुरारि	त्रिपुरारि, शिव	कुम्हड़बतिया	छोटा कच्चा फल
रिस	क्रोध	सुराई	वीरता
सयनहिं	इशारे से	नेवारे	मना करना
छोहू	कृपा	अयाना	बेसमझ
अचगरि	चंचलता	जुड़ाने	शान्त होना
कालकूट	विष	मीचु	मृत्यु
परिहरि	छोड़कर	पानी	पाणि, हाथ
चीन्हा	पहचाना	उतरु	उत्तर
सन	से	द्विज	ब्राह्मण
कृसानू	अग्नि	दोपु	दर्प, घमण्ड
पिनाक	धनुष	पचारै	ललकारना
सकाना	डर जाना	पांवर	नीच
पटल	आवरण, पर्दा	बिसमय	आश्चर्य
बनज	कमल	धेनु	गाय
नागर	चतुर	अनंगा	कामदेव
दुंदुभी	नगाड़ा		

रहीम

गाढ़े	कठिन	नैन-बान	नेत्र रूपी तीर
केर	केला	काज	काम
सरै	पूर्ण हो जाने पर	सिरावत	बहा देना
निबहै	निर्वाह होना	सबलन	शक्तिशाली
खुसी	प्रसन्नता	जहान	संसार
वित्त	धन	मिताई	मित्रता
भुजंग	साँप	विषया	वासना आदि
स्वान	कुत्ता	सुजन	सज्जन
पान	पानी	संचहि	एकत्रित करना
काक	कौवा	पिक	कोयल
मांहि	में	धूर	मिट्टी
दादुर	मेंढक	बाढ़ि	बहुत
काको	किसको	नीके	अच्छे
बिथा	व्यथा, कष्ट	गोय	छिपाकर
अठिलैहैं	हँसी उड़ाना	पय	दूध
धरि	पकड़कर		

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

अहै	है	हिय	हृदय
प्रवीन	निपुण	बास	निवास, रहना
तुतरात	अस्पष्ट बोलना	तबै	उसी समय
मांहि	में	उतपात	झगड़ा
भ्रातगन	भाइयों का समूह	बादि	व्यर्थ
पी	प्रियतम	बिनसाई	नष्ट होना
लोन	नमक	बिंजन	व्यंजन, खाने की वस्तुएँ

उपाई	उपाय	सेवों	सेवन, भजन
नंदलाल	नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण	लोचन	आँख
बिसाल	बड़ी	रीझौं	प्रसन्न होना
खीझौं	क्रुद्ध होना	दुर्दशा	बुरी अवस्था
साज	सामान	ख्वारी	दुःख की बात
टिक्कस	टिकट		

मैथिलीशरण गुप्त

भारती	वाणी	भद्रभावोद्भाविनी	अच्छे विचारों को प्रकट करने वाली
दिवा	दिन	विपदा	संकट, मुसीबत
सम्पदा	धन	नरनाथ	राजा
उत्कर्ष	उन्नति	ज्ञान-दायक	ज्ञान देने वाला
विधि-विधायक	नियम बनाने वाला	श्री	ऐश्वर्य, शोभा
पंक	कीचड़	क्रन्दन	रोना
ठौर	स्थान	भव-सिन्धु	संसार रूपी समुद्र
बड़भागी	भाग्यशाली	परमार्थ	दूसरे की भलाई
नीलाम्बर	नीला आकाश	हरित	हरा
मेखला	करधनी, कटि-सूत्र	रत्नाकर	समुद्र
अभिषेक	स्नान	रज	धूलि, मिट्टी
मोद	प्रसन्नता	अभ्रंकष	आकाश को छूने वाले
जठरानल	पेट की अग्नि अर्थात् भूख	मुददायक	प्रसन्नता देने वाला
नाता	सम्बन्ध	सदृश	समान
नीर	पानी	श्रम	थकान
शुचि	पवित्र	तरणि	सूर्य
तम	अन्धेरा	सुधोपम	अमृत के समान
यथार्थ	उचित, ठीक		

सुमित्रानन्दन पन्त

हिमकण	ओस के विन्दु	अकर्ण	जिसके कान न हों
अहि	साँप	नत	झुका हुआ
छुटपन	बचपन	वंध्या	जिसके सन्तान न होती हो
अर्धशती	पचास वर्ष		
माणिक	मोती	निर्निमेष	अपलक
नाटे	छोटे	प्रसविनी	उत्पन्न करने वाली

सुभद्राकुमारी चौहान

अतुलित	जिसकी तुलना न हो सके	चीथड़ों	फटे हुए कपड़े
सुधा	अमृत	द्रुत	शीघ्र
आकांक्षा	इच्छा	प्राकृत	स्वाभाविक
निष्पाप	पाप के विना	संताप	दुःख
कुटिया	झोंपड़ी	कौतूहल	आश्चर्य
आह्लाद	प्रसन्नता	मंजुल	सुन्दर
सोना	स्वर्ण, एक धातु	क्रीड़ा	खेल
मदिरा	शराब	निरन्तर	हमेशा
सूत्र	धागा	वलयित	घिरा हुआ
दिव्य	अलौकिक	भग्न	टूटी हुई
संचित	एकत्रित	शाला	घर
वार	चोट	निहित	छिपी हुई
निशीथ	रात	गिरा	वाणी, आवाज़

रामधारीसिंह 'दिनकर'

आलोक	प्रकाश	प्रहरी	रक्षक
हिमाद्रि	हिमालय	सुरभि	सुगन्ध
धरणी	पृथ्वी	अनल	अग्नि
प्रखर	तेज	संजीवन	अमृत
हालाहल	विष	खड्ग	तलवार
अन्तर	हृदय	शकारि	शक के शत्रु
अरि	दुश्मन	ज़मीं	पृथ्वी
अजेय	जिसे जीता न जा सके	कक्ष	कमरा
कृपाण	तलवार	निर्भय	निडर, विना डरे हुए

इस पुस्तक की प्रतियां बोर्ड के नई दिल्ली स्थित कार्यालय के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रकाशकों व पुस्तक विक्रेताओं से भी प्राप्त की जा सकती हैं:—

१. अत्तरचन्द कक्कड़ एण्ड सन
नई सड़क, दिल्ली—६.

२. आर्य बुक डिपो,
नाई वाला, करोल बाग, नई दिल्ली—५.

३. यंग मैन एण्ड कम्पनी,
नई सड़क, दिल्ली—६.

४. श्री महावीर बुक डिपो,
नई सड़क, दिल्ली—६.

५. सुमेर ब्रादर्स एण्ड कम्पनी
बिरला लाइन्स, सब्जी मण्डी, दिल्ली—६.

६. सुरजीत बुक डिपो,
नई सड़क, दिल्ली—६.